न्याय की परिकल्पना व्यवस्था के स्वरूप पर निर्भर –बजरंगलाल

व्यवस्था न्याय की पूरक है। न्याय आवश्यकता है और व्यवस्था उसकी पूर्ति का माध्यम। वस्तु व्यवस्था का व्यावहारिक स्वरूप ही न्याय के गुण दोष को निर्धारित करता है। अधिकार के रूप में न्याय की पूर्ति बिना व्यवस्था के संभव नही दिखती अतएव व्यवस्था के दायित्व को गंभीरता से लेना नितान्त आवश्यक जान पडता है।

न्याय के आर्दशवादी दृष्टिकोण, अधिकारों और व्यवस्था के बीच एक संतुलन अनिवार्य है। न्याय की मूलभूत आवश्यकता के अनुसार यदि व्यवस्था की पूर्ति अथवा आचरण नही होता है तब व्यवस्था का दूषित होना लाजिमी है। इसके लिए न्याय की मांग के आधार पर व्यवस्था की मात्रा घटाई – बढाई जाती है किसी भी परिस्थिति में न्याय की मांग को व्यवस्था के लिए पूरा करना संभव नही हुआ तो व्यवस्था धीरे धीरे अव्यवस्था में बदल जायेगी।

वर्तमान भारत में न्याय और व्यवस्था के बीच कोई संतुलन नही दिखता। भारत में इसका अनुपात इस प्रकार है कि कोई व्यक्ति एक सौ लोगा को भोजन पर आमंत्रित कर जबकि उसकी क्षमता मात्र पन्द्रह लोगों को भोजन कराकर शेष 85 लोगों को भूखा रख दिया जायें जबकि अगले दौर में नये व पुराने 185 लोगों के बीच फिर मात्र 15 लोगों को भोजन बंटने की स्थिति हो तब स्वाभाविक है कि अव्यवस्था/कुव्यवस्था के साथ छीना झपटी लूटमार होने की संभावना भी हो सकती है। ऐसी स्थिति में कुछ सामर्थ्यवान तो भोजन कर सकेंगे शेष सामान्य लोग भ्खे पेट चुपचाप घर लौट जायगे। यह स्थिति व्यवस्था के स्वरूप में बिल्कुल नहीं हो सकती क्योकि आवश्यकता और पूर्ति के बीच कोई संतुलन नहीं है। स्वाभाविक है कि व्यवस्था और न्याय के बोच पनपा यह असंतुलन मूर्खता का परिचायक है या हमारी धूर्तता का। निश्चित रूप से यह हमारी बुद्धिमानी नहीं कही जा सकती है।

भारत में न्याय की मांग लगातार बढती जा रही है। नित नयी–नयी समस्याएँ/मांगे उठायी जाती है और व्यवस्था से इसकी पूर्ति का आश्वासन मिलते ही वह मांग न्याय में बदलती जाती है। यह नया आश्वासन पूर्व से ही न्याय और व्यवस्था के बोच चल रहे असंतुलन को बढाता है। तब तक कोई मांग और आश्वासन का क्रम आ जाता है जो इस असंतुलन को और भी अधिक बढाता है। कुछ समय तक असंतुलन को और भी अधिक बढाता है। कुछ समय तक अव्यवस्था होती है और फिर कुव्यवस्था में बदल जाती है। यह क्रम सम्पूर्ण भारत में पचपन वर्षो से चल रहा है। पहले यह असंतुलन कम था किन्तु अब धीरे धीरे बहुत अधिक हो गया है।

न्याय और व्यवस्था के बीच इस असंतुलन के चलते बिना व्यवस्था की मात्रा का आकलन किये न्याय की मांग करना और आश्वासन देना भारत में एक फैशन बन चुका है। पिछले कुछ वर्षो से भारत में न्याय देने की नई की नई परंपरा भी विकसित हो रही है और यह प्रणाली व्यवस्था को बहुत क्षति पहचा रही है। उदाहरण स्वरूप सौ लोगा की लाईन में पन्द्रह लोगा की ही भोजन मिलना निश्चित है और व्यवस्था यह बनाई गयी कि लाईन से ही प्रत्येक को भोजन मिलेगा, तो स्वाभाविक है कि पीछे की लाईन वाले भूखे रह जायेंगे और इसका कोई उपाय भी नही है। ऐसी स्थिति में न्यायालय बीच में ही हस्तक्षेप करके किसी बीच वाले को भोजन देने का आदेश शुरू कर दे तब व्यवस्था का क्या होगा ? संकट में पडो व्यवस्था और अधिक संकटग्रस्त हो जायेगी। प्रायः पिछले कुछ वषा से सीधे न्याय दिलाने का एक फैशन बन गई। व्यवस्था तोडकर न्याय दिलाने के प्रयत्न से प्रशंसा भी खूब मिलती है और प्रचार भी किन्तु यह नही सोचा जाता कि इस पद्धति का परिणाम कितना भयकर हो रहा है। पहले से लंबित और चरमरा रही व्यवस्था कितनी संकट में आती जा रही है राजनैतिक दल न्याय/मांगों की पूर्ति का आश्वासन देते है और न्यायालय उस आश्वासन को न्याय मानकर उसकी पूर्ति का आदेश दे देता है। दोनां अपनी अपनी लोकप्रियता का ग्राफ बढा लेते ह। नित व्यवस्था कैसे सुधरे इससे न नेताओं को मतलब है न ही न्यायालयों को। मानवाधिकार संगठन तथा अन्य अनेक तथा कथित समाजिक संस्थाओं या उससे जुडे लोगों का तो यह धंधा ही बन गया है।

हमारे राष्ट्रपति श्री अब्दुल कलाम व्यक्तिगत रूप से प्रशंसा के पात्र ह। उनकी सादगी चरित्र ईमानदारी और धर्म निरपेक्षता उनका स्वभाव है नाटक नही। इसके बावजूद राष्ट्रपति के रूप मे उनकी कार्य प्रणाली पर अवश्य विचार करने की आवश्यकता है। दैनिक भास्कर में 19 जनवरी 2005 को प्रकाशित एक खबर के अनुसार महामहिम राष्ट्रपति अब्दुल कलाम कुछ दिन पूर्व लखनऊ दौर पर थे तब एक शासकीय सेवा में कार्यरत नर्स ने सुरक्षा घेरा तोड कर अपनी फरियाद राष्ट्रपति जी को सुनाई अथवा सुनानी चाही। सुरक्षा घेरा तोडने तथा बिना अनुमति के राष्ट्रपति से शिकायत करने को अनुशासन हीनता मानकर उसे नौकरी से निकाल दिया गया जिस पर राष्ट्रपति जी ने नाराजगी व्यक्त करते हुए उ.प्र. सरकार को पत्र लिखा। अनेक लोगों ने राष्ट्रपति के इस प्रयास कि प्रशसा को किन्तु मुझे इस प्रयास में कुछ संकट दिखाई देता है। यहा दो प्रश्न उठते है। प्रथम क्या राष्ट्रपति को ऐसा करने का अधिकार था ? दूसरा क्या राष्ट्रपति को ऐसा करना उचित था? ये दोनो ही प्रश्न जटिल है। मेरे विचार में राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि वह नियम तोड कर न्याय दे सके किन्तु आचार संहिता के दृष्टिकोण से यह उचित नही। भारत की संपूर्ण व्यवस्था राष्ट्रपति के नाम पर चलती है। यदि व्यवस्था किसी फरियादी को न्याय देने में बाधक है तो राष्ट्रपति को भो यह अधिकार कहा से प्राप्त हुआ या उनको ऐसा क्यों करना चाहिए कि वे व्यवस्था में परिवर्तन करने के स्थान पर व्यवस्था को तोडकर न्याय देने की पहल करें जिस अधिकारी ने उस नर्स को सुरक्षा घेरा तोडने से रोका और जिसने उसे अनशासनहीनता के लिए

दण्डित किया उन अधिकारियों ने तो व्यवस्था का पालन किया जिसके लिए वे बधाई पात्र हो सकते है किन्तु राष्ट्रपति जी के कृत्य का किस श्रेणी में रखा जाय यह एक विचारणीय प्रश्न है। यदि राष्ट्रपति जी की सहृदयता कही आड आती है तो भविष्य में सुरक्षा घेरा न तोडने की व्यवस्था और बिना अनुमति उच्च अधिकारियों से मिलने पर प्रतिबध जैसे–कानून हटा लें। यहा राष्ट्रपति जी की दो भूमिकाए हो सकती है प्रथम सहृदय अब्दुल कलाम की दूसरी भारत के महामहिम राष्ट्रपति की अब्दल कलाम को दया, करूणा, त्याग और न्याय करने का व्यक्तिगत रूप से अधिकार हो सकता है परन्तु राष्ट्रपति के रूप में वे पूरी तरह से उस व्यवस्था से बंधे ह जो उनके स्वयं के मार्गदर्शक तथा नाम से बनाई गई है यदि वे दया, करूणा, त्याग और न्याय के कारण निर्मित व्यवस्था को तोडते है तो वे व्यवस्था को कमजोर कर रहे ह। यह सस्ती लोकप्रियता भी हो सकती है और उनकी महानता भी किन्तु राष्ट्रपति के रूप में उनका वह व्यवहार देश को क्षति ही पहचाएगा। इसी परिपेक्ष्य में अनेक राजनेता/उच्च अधिकारी भी वहा वही लूटने के क्रम मे प्रायः व्यवस्था तोडने के अभ्यस्त हो गये है। वस्तुत वह भारत की व्यवस्था कमजोर ही कर रहे है।

आज कल न्यायालय की भूमिका बहुत मानवीय और संवेदनशील हो गयी है एक साधारण पोस्ट कार्ड मात्र लिख देने को भी वह याचिका मानकार कार्यवाही शुरू कर देता है वास्तव में यह बहुत आदर्श स्थिति है किन्तु क्या ऐसा करना उचित है क्या न्यायालय को व्यवस्था के तहत ऐसा करना चाहिए जो न्यायालय का क्या औचित्य है इस तरह दया दिखाने का। यदि विलम्ब का कारण व्यवस्था का अभाव है तो इस पर व्यवस्था तोडकर आदर्श प्रस्तुत करने से व्यवस्था और क्षीण होती जायेगी। जब देश व्यवस्था के संकट स गुजर रहा हो तब न्यायालय को व्यवस्था कमजोर करने स बचना चाहिए।

आज भारत लगातार अव्यवस्था कि ओर बढ रहा है कुछ राजनैतिक दल तो सोची समझी रणनीति के अन्तर्गत नित नई नई आदर्श मांगे प्रस्तुत करते ह। उनके लिये आदोलन करते है उन्हें न्याय संगत होने का जामा पहनाते है और अन्त में किसी ना किसी तरह उन्हे आशिक या पूरी की पूरी मनवा लेते है। ऐसी न्याय संगत मांगे व्यवस्था को और कमजोर करती है हमारे अनेक उच्च या सर्वोच्च पदाधिकारी भी प्रायः यह भूल जाते हैं कि व्यवस्था का दायित्व संभालने के बाद उन्हे अपने व्यक्तिगत जीवन और दायित्वाधिकारी जीवन में घालमेल करना व्यवस्था को नुकसान पहुचाना है यदि वे एक सा दुहरा जीवन नही जी सकते तो उन्हे ऐसे पद स्वीकार ही नही करना चाहिये कोई न्यायाधीश यदि न्याय के स्थान पर दया करना व्यक्ति का व्यक्तिगत अधिकार है पद का अधिकार नहीं।

सार्वजनिक बैठकों में भी कमोवेश यही स्थिति है वहां व्यवस्था होती ही नही। व्यवस्थापक बार बार रोकते है किन्तु वक्ता कुछ भी और कितना भी बोल चले जाते है कोई विचार विमर्श होता नही और कोर ग्रुप द्वारा पारित प्रस्ताव पढ कर तथा हाथ उठाकर पारित हो जाता है मैं ऐसे मामलों में बहुत अलग तरह से व्यवस्था का अधिकतम पालन करने का पक्षधर हूँ। मेरी बैठकों में प्रायः ही कोई नाराज होकर चला जाता है किन्तु म व्यवस्था तोडने की अनुमति नही देता जबकि मै व्यवस्था नही तोडता मुझे अब तक इस व्यवस्था की प्रतिबद्धता से बहुत लाभ हुआ है। इससे समय की बचत होती है कार्य की गुणवत्ता बढती है तथा निगम/कानून का पालन करने वालों के साथ न्याय होता है।

मै मानता ह् कि भारत एक लोकतांत्रिक देश होने के कारण यहाँ व्यवस्था से ही न्याय मजबूत किया जा सकता है। व्यवस्था का ठीक–ठीक आकलन करक उसी अनुपात में न्याय की घोषणा भी करनी चाहिए और दायित्व भी स्वीकार करना चाहिए हमारे उच्च पदाधिकारियों को भी स्वयं व्यवस्था का पालन करने और दूसरों से व्यवस्था पालन करने को आदत डालनी चाहिए क्योंकि वर्तमान भारत में जो अव्यवस्था और कुव्यवस्था का खतरा मंडरा रहा है उसका मुख्य कारण न्याय और व्यवस्था के बीच असंतुलन ही है जिसको तत्काल संतुलित करना चाहिए।

———प्रश्नोत्तर———

1. श्री ज्ञानेन्द्र मिश्र नैनी इलाहाबाद

प्रश्न– देश के संभावित भावी कर्णधार राहुल गांधी ने कांग्रेस चिन्तन शिविर में पार्टी के आर्थिक सुधार कार्यक्रमों की आलोचना सुनने से इन्कार करके राजनैतिक असहिष्णुता का परिचय दिया है। उन्हें पार्टी कार्यकर्ताओं के विरोधी स्वर इस तरह दबाने की तानाशाही मनोवृत्ति से बचना चाहिये। अन्यथा स्वर्गीय संजय गांधी और राहुल गांधी में क्या अन्तर रह जायगा।

राहुल जी ने उस शिविर में पेप्सीकोला और कोकाकोला शीतलपेय कम्पनियों का यह कह कर बचाव किया कि उसमें कीटनाशक जान बुझकर नही मिलाये गये थे बल्कि दूषित भूगर्भ जल का परिणाम मात्र है। क्या राहुल जी को यह कहना चाहिये था? यदि यह सच भो हो तो उन्हें इस तरह विदेशी कम्पनियों का पक्ष लेना शोभा नहीं देता? मैं आपसे जानना चाहता हूँ कि इस संबंध में आपके विचार क्या है?

उत्तर– आपने इस संबंध में गंभीर पश्न उठाया है। मैंने दनिक नवभारत की बाइस जनवरी के अंक में सम्पादकीय के रूप मे बेबाक टिप्पणी के अन्तर्गत भी ऐसे ही विचार पढ है। समाचार पत्र क लेखक की राय भी वैसी ही है जैसी आपकी।

राहुल जी ने कांग्रेस के चिन्तन शिविर में आर्थिक सुधार कार्यक्रमों की आलोचना सुनने वाले को किन परिस्थितियों में रोका उन स्थितियों को जाने बिना कुछ टिप्पणी करना ठीक नही। मेरा अपना अनुभव है कि कई लोग समय की महत्ता विषय चर्चा की प्राथमिकताएँ उनके कथन कि सारगर्भिता आदि का

विचार किये बिना बोलते रहते है। या अनावश्यक एक ही बात को बार बार बोलते हैं जिन्हे जब रोका जाता है तो उन्ह बुरा लगता है। सहिष्णुता का अर्थ अव्यवस्था नही माना जाना चाहिए मैं नही समझता कि राहुल जी ने वक्ताओं को इसलिये अपनी बात कहने से रोका होगा कि वे आर्थिक सुधारों के विरूद्ध बोल रहे है और यदि किसी मुददे पर अन्तिम रूप में कोई नीति बन जाने और घोषित हो जाने के बाद भी ऐस विरोध की रट लगाये हो तो उन्हे व्यवस्थित करने हेतु रोकने से मैं सहमत हूँ। स्थिति क्या थी। मैं नही कह सकता।

किन्तु प्रश्नकर्ता तथा नवभारत के सम्पादकीय का दूसरा अंश बिल्कुल विपरीत है। प्रश्न का पहला भाग कार्यकर्ताओं की विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का पक्षधर है दूसरा अंश राहुल गांधी की विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का विरोधी। क्या राहुल गांधी को वहा वह नही बताना चाहिये जो वे सच समझते है। कोकाकोला और पेप्सीकोला में कीटनाशक का होना कितना यथार्थ है और कितना भावनात्मक यह बात तो अवश्य विचारी जानी चाहिए। मैं विदशी उत्पादों के प्रयोग के विरूद्ध हूँ क्योंकि इससे स्थानीय रोजगार के अवसर घटते हैं किन्तु मैं इस विरोध को भावनात्मक स्वरूप प्रदान करने के पक्ष में नहीं। कुछ भारतीय कम्पनियों से धन लेकर या राजनीतिक उददेश्यों को ध्यान में रखकर जो विराध हाता ह। वह पेशा भले ही हो किन्तु विरोध नही। जब भाजपा विरोध में हाती है और कांग्रेस सत्ता में तब दोनों की इस संबंध में जो भाषा होती है वह भाषा सत्ता बदलते ही बदल जाती है इस फेर बदल को कोई अर्थ नही है साथ ही उस विरोध को भी कोई अर्थ नही है जिन्हें सब काम छोडकर विरोध करना ही है। मैं उस विरोध को महत्वपूर्ण मानता हू। जो गुण दोष की समीक्षा की सच्चाई न दिखकर विदेशी कम्पनियों के विरोध की ठेकेदारी का अधिक आभास होता है। जो ठीक नही है।

मैं पेप्सीकोला कोकोकोला के प्रदूषण क विषय में अब तक सच्चाई नही जान सका कि बात क्या है? यदि राहुल जी की बात सच है तो फिर भारतीय शीतल पेयों में भी वैसा ही प्रदूषण होना चाहिये। यदि स्थानीय भारतीय शीतल पेय प्रदूषण रहित है तो राहुल गांधी की बात गलत है। उन्हे इस तरह विदेशी कम्पनियों का पक्ष नही लेना चाहिये और यदि भारतीय शीतल पेयों में भी प्रद्षण वैसा ही जैसा कोला पेय में तो फिर प्रदूषण के नाम पर विरोध क्यों है? मैं दोना के सच जाने बिना कुछ कह नही सकता क्योंकि कम्पनियों का बनाने और बेचने की छूट देकर गलत करता है। मैं भी उससे सहमत था। मैंने बहुत पता किया तो मालूम हुआ कि रासायनिक खाद विदेशी कम्पनियों को यही बनाने की छूट देने से आयत की समस्या नही रहेगी। मुझे इनका भी तर्क ठीक जॅचा। दोनो पक्ष एक साथ बैठकर चर्चा करें तब तो आम लोग जाने कि सच्चाई क्या है दानों पक्ष पृथक पृथक प्रचार करें तो समझना बहुत कठिन होता है और यदि एक पक्ष अपने कथन के पक्ष मैं वैचारिक तर्क के स्थान पर भावनात्मक प्रचार का सहारा लेने लगे तो निर्णय और भी कठिन होता है।

मेरे एक सर्वोदयी मित्र ने हमारी दिल्ली की बैठक में कोकाकोला आने पर आपत्ति प्रकट की। मैं स्वयं इन सबका उपयोग नही करता। अतः मैंने भी भविष्य के लिय सर्तक किया। किन्तु मेरे मित्र तो साक्षात दुर्वासा ही हो गये और कोला वापस करने की बहुत जिद करने लगे। मैं उनकी जिद के समक्ष झुक गया किन्तु मैने अपने सर्वोदय मित्र पर कटाक्ष किया कि एक विदेशी महिला भारत में विवाह करके आपकी नजर में इतनी स्वदेशी बन जाती है और भूल से की गई आयोजकों की गलती के लिये आप आसमान सर पर उठा रहे है। तब वे मित्र चुप हुए। मुझे इन आतिवादी सिद्धान्तों से दुख होता है। मैं चाहता हूँ कि वैचारिक मुददों को भावनात्मक स्वरूप देने से बचा जाय।

आपने मुझे प्रश्न पूछा जिसका मैने अपनी समझ से उत्तर दिया। मैं भी कुछ प्रश्न भेज रहा हूँ। आप मित्रों से उम्मीद है कि आप उत्तर देकर मेरी जिज्ञासा शान्त करेगे।

(1) विदेशी कम्पनियों के शीतल पेय और स्वदेशी कम्पनियों के शीतल पेयों के बीच हानिकारक तत्वों में समानता है या अन्तर। यदि अन्तर है तो क्यों विदेशी कम्पनियॉ उस अन्तर को दूर क्यों नही कर पाती। यदि अन्तर नही है तो विदेशी विरोध के लिये कीटनाशक प्रयोग को मुददा बनाना कितना उचित है और कितना न्यायोचित ?

(2) स्वदेशी आन्दोलन ग्यारह मौलिक समस्याओं में से किन किन का समाधान है। यह आंदोलन हमारी प्राथमिकताओं में सबसे उपर होना चाहिए या आन्दोलन के अन्य विषयों के साथ।

(3) हम भारत की स्वदेशी व्यवस्था का जो आर्थिक स्वरूप प्रस्तुत कर रहे है उसम मूलभत आवश्यकता को तथा श्रम निर्मित सभी प्रकार की वस्तुओं को पूरी तरह कर मुक्त करके कृत्रिम उर्जा पर भारी कर को सिफारिश शामिल है इससे आवागमन मंहगा होगा छोटे उद्योग मजबूत होंगे और इसके परिणाम स्वरूप विदेशी कम्पनियाँ स्वत फेल हो जायेंगी। विदेशी कम्पनियों पर से पूरी तरह कानूनी या सामाजिक विरोध को समाप्त करके यदि ऐसा आर्थिक समाधान कर दे कि सांप भी मर जाये और लाठी भी बची रहे तो आप इससे कितना सहमत हैं?

(4) स्वदेशी आन्दोलन कितना भावनात्मक है और कितना तर्क संगत आशा है कि पाठक इस संबंध में उत्तर देंगे।

2. 2/2/ 89 ग प्रश्न श्री विश्वनाथ सिंह जी हिल्सा नालंदा बिहार,

प्रश्न– आपने कई बार लिखा है कि व्यवस्था परिवर्तन के चरित्र सुधरेगा। मैं व्यवस्था परिवर्तन के पक्ष म हूँ। मैं पूरी तरह इस काम में आपका सहयोग करूँगा। किन्तु व्यवस्था बदलने से चरित्र बदलेगा। यह असत्य मैं कैसे स्वीकार कर लूँ ? मेरे विचार में हृदय परिवर्तन से ही चरित्र निर्माण संभव है। जब तक हृदय परिवर्तन नही होगा तब तक न चरित्र बदलेगा न संस्कार और न ही स्वाभाव। आप इस प्रश्न का विस्तृत समाधान करें और अपने कथन में संशोधन करें।

3. डा. अनुपम नैनीताल

प्रश्न– ज्ञानत्व अंक छयासी में व्यवस्था और चरित्र को समानुपाती बताया गया है मेरे विचार में इसमें संशोधन की आवश्यकता है। चरित्र निर्माण कभी सरकारी कानूनों से नही हुआ करता और न ही समाज से होता है। चरित्र तो परिवार व्यवस्था से बनता है। भारतीय संवैधानिक व्यवस्था ने परिवार को अलग करके व्यवस्था बनानी शुरू की जो पूरी तरह गलत था इससे परिवार व्यवस्था टूटी, परिवार भावना टूटी और व्यक्ति उच्चश्रखल होता चला गया।

आज कल हम देख रहे है कि बलात्कार के बाद हत्या का प्रचलन बढ रहा है क्योकि बिना गवाह के न्यायालय सजा दे नही सकता। अतः सबूत नष्ट करन का पहले प्रयास होता है आप प्रधान मंत्री राष्ट्रपति या न्यायाधीश बदल कर भी बिना सबूत के सजा कैसे दे सकते है। अतः व्यवस्था बदलने से चरित्र बदल जायेगा।

लोग अपराध बन्द कर देंगे अपराधियों को सजा मिलने लगेगी यह तर्क मेरी समझ में नहीं आया और अधिक स्पष्ट करने की कृपा करे।

उत्तर – आपके प्रश्न अत्यन्त गंभीर और जटिल होने से विस्तृत समीक्षा करनी होगी। भारत के वैचारिक धरातल पर एक धुंध छाई है। भावनात्मक प्रचार ने विचार मथन की प्रकिया को अवरूद्ध कर दिया है। प्रत्येक विषय को भावनात्मक रूप देने की गलत प्रणाली विकसित हो गई है। अनेक शब्दों ने अपने अर्थ बदल दिये ह। अनेक शब्दों कि परिभाषाएँ विपरीत अर्थ निकालने लगी है। हमारे समक्ष बहुत दिक्कत आती है जब चर्चा में हमें क ख ग से बात शुरू करनी पडती है। किन्तु समाज में फैली धुंध दूर करने हेतु यह सब करना उचित भी है आवश्यक भी।

व्यवस्था और सत्ता के बीच अन्तर करने की आवश्यकता है। प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति या जज बदलने से व्यवस्था नही बदलती क्योकि व्यवस्था तो एक प्रणाली है। जिसके आधार पर ये लोग काम करते है। व्यवस्था धार्मिक व्यवस्था पारिवारिक व्यवस्था आदि। सबके मार्ग भी भिन्न होते है तथा परिणाम भी। सभी एक दूसरे से बिल्कुल पृथक पृथक होते हुए भी एक दूसरे के पूरक ह।

चरित्र भी तीन प्रकार का होता है। 1. अच्छा 2. सामान्य 3. बुरा। धर्म समाज और परिवार चरित्र का अच्छी दिशा में ले जाने मे प्रेरक और सहायक होते है। ये मरे चरित्र को रोकने में हृदय परिवर्तन ईश्वरीय भय, सामाजिक भय, पारिवारिक भय आदि का सहारा लेते हैं किन्तु इन सबकी मुख्य भूमिका होती है चरित्र निर्माण। शासन या राजनैतिक व्यवस्था की सिर्फ एक ही भूमिका होती है कि एक निश्चित सीमा के अधिक चरित्र पतन के कार्य को बल पूर्वक रोकने का प्रयास। इस तरह सवैधानिक व्यवस्था ही एक मात्र शक्ति है जो आपराधिक चरित्र पतन रोक सकती है। कानून कभी भी सामान्य व्यक्ति को चरित्रवान नही बना सकता किन्तु कानून सामान्य व्यक्ति के चरित्र पतन को रोक सकता है क्योंकि संवैधानिक व्यवस्था का तो काम ही यही है।

जब कानून चरित्र निर्माण करने लगें और चरित्र पतन रोकने का दायित्व समाज पर छोडने लगें तो यह बिल्कुल विपरोत स्थिति होती है। इसका सीधा परिणाम होता है चरित्र पतन क्याकि कानूनों से चरित्र निर्माण हो ही नही सकता और न ही बिना कानून के अपराध रूक सकते हैं। यदि एसी संवैधानिक व्यवस्था चल रही हो तो उक्त व्यवस्था ही चरित्र पतन के लिये उत्तरदायी है और व्यवस्था को बदलना ही उसका विकल्प है। भारत में दहेज, छुआछूत, शराब, गांजा, बालविवाह, बालश्रम आदि सामाजिक बुराइयों को कानून से रोकन का निरंतर प्रयास हो रहा है दूसरी और डकैती हिंसा आदि आपराधिक बुराइयों को रोकने के लिये हृदय परिवर्तन की बाते कही जाती है। यह विपरीत संवैधानिक व्यवस्था पूरी तरह बदले बिना हम कोई चरित्र निर्माण नही कर सकते क्योकि समाज धर्म और राजनैतिक व्यवस्था वर्ष में पच्चीस प्रतिशत तक चरित्र पतन करती है तो कुल मिलाकर पन्द्रह प्रतिशत चरित्र गिरता ही है जैसे कि अभी हो रहा है। हम यदि चरित्र उपर ले जाना चाहते है तो संवैधानिक व्यवस्था को इस तरह बदलना होगा कि शासन और कानूनों का हस्तक्षेप समाज धर्म और परिवार में कम से कम हो जाय तथा शासन अपराध नियंत्रण तक सीमित रहकर उसे सफलता पूर्वक सम्पन्न कर लें। मेरे विचार में चरित्र उत्थान के उददेश्य में सबसे बडो बाधा है। यह राजनैतिक व्यवस्था और इसे बदलना ही इसका एकमात्र मार्ग है।

भारत के संवैधानिक स्वरूप में परिवार प्रणाली को कहीं स्वीकृति या मान्यता नही ह। व्यक्ति को सीधा राज्य से जोड दिया गया और राज्य को केन्द्र से। परिवार और गांव की न कोई संवैधानिक रचना की गई न ही उनके अधिकारों को परिभाषित किया गया परिवार के पारिवारिक विषयो में भी शासन कानून बनाने लगा। स्त्री किसी पति की पत्नी रहते हुए भी पति के विरूद्ध बलात्कार का प्रकरण दर्ज करा सकती है। ऐसे ऐसे कानून बन रहे है। सप्ताह में एक दिन महिलाओं को भोजन बनाने की छूट मिले ऐसे अनावश्यक प्रस्तावों पर संसद बहस करती है राजनैतिक शक्ति को कुछ परिवार तक समेट कर रखने के दुष्चक्र के लिये राजनीति में महिला आरक्षण का बिल लाया जाता है। स्त्री या पुरूष को व्यक्ति रूप में सीधा राजनैतिक व्यवस्था से जोडा गया है। बीच से पारिवारिक व्यवस्था को नकारते हुए। यदि ये इतने ही महिलाओं के प्रति सहृदय है। तो महिला आरक्षण बिल में यह अंश क्यों नही जोडते कि किसी परिवार का एक ही सदस्य सांसद या विधायक बन सकता है। परिवार की एक स्पष्ट परिभाषा बना दी जायं। परिवार से बाहर की महिला को आरक्षण का लाभ नही मिलेगा। आदि परिवार व्यवस्था को संवैधानिक व्यवस्था में अमान्य और कमजोर करके महिला को एक वर्ग के रूप में खडा करना एक घातक कदम है। इस संबंध में आगे अलग से लेख जायगा।

इस तरह अब भी मैं आश्वस्त हूँ कि संवैधानिक व्यवस्था में आमूल्य चूल बदलाव या व्यापक संशोधन करके ही हम चरित्र पतन को भी रोक सकते ह और चरित्र निर्माण भी कर सकते ह इसलिये हमने व्यवस्था पवित्रन को प्रथम आवश्यकता घोषित किया है।

3. श्री वेद व्यथित संयोजक सामाजिक न्याय मंच वल्लभगढ

पिछले दो तीन माह से मैं आपको पत्र लिख रहा हूँ। मने आपसे कुछ गंभीर प्रश्न किये थे आपने उत्तर नही दिया। यदि आप निरूत्तर हों तो हमें सूचित कर दे जिससे हम प्रतिक्षा तो न कर। आपको न तो उत्तर देने में विलम्ब करना चाहिए न ही पलायन।

उत्तर– हमारा उददेश्य समाज में फली असत्य धारणाओं पर एक सार्थक बहस प्रारंभ करना है। जिससे सत्य और झूठ की पहचान सुविधाजनक हो। इस तरह जो लोग मेरे विचारों से सहमत है। उनके पत्रों का हम कोई उत्तर नही देत किन्तु जो लोग उन विचारों से असहमत है। उनका उत्तर अवश्य देते है। साधारण प्रश्ना का उत्तर ता मैं स्वयं ही दे दिया करता हूँ किन्तु गंभीर टिप्पणियों पर हम कई मित्र बैठकर लम्बी चर्चा करते है। यदि ऐसी टिप्पणी के विषय पर अन्य लोगों के विचार भी आने की निकट भविष्य म संभावना हो तो ऐसे विद्वानों के पत्रों की प्रतीक्षा भी करते है। उत्तर लिखने के बाद भी छपकर आप तक पहुँचने में एक माह और लग जाता है दिल्ली के भाई रमेश शर्मा जी का पत्र मिले ढाई माह हो गये। आपके पत्रों को भी इतना समय हो गया होगा। आप दोनों के पत्र बिल्कुल ही एक दूसरे के विपरीत थे किन्तु इतने गंभीर कि लिखने के पूर्व और लिखने के बाद भी काफी कुछ विद्वानों से मंथन करना पडा। कई शब्द कटे और कई जुड क्योकि आप दोना के प्रशनों का उत्तर सिर्फ आपके उत्तर तक सीमित न होकर व्यापक प्रतिक्रिया पैदा कर सकता था। अतः विलम्ब होना हमारा दोष नही बल्कि मजबूरी थीं।

आपके प्रशनों के उत्तर ज्ञान तत्व अंक अठासी में भेजे जा चुकें है। मुझे पता है कि मेरे उत्तर के बाद कुछ लोग गंभीरता से विचार करेंगे। कुछ लोग प्रसन्न होंगे कि अच्छी आलोचना की है तो कुछ लोग बहुत नाराज होगे कि बहुत कटु भाषा का प्रयोग है हमारी मजबूरी है कि हमें यह सब कुछ झेलना पडता है। आप विश्वास करिय कि मैं या मेरे साथी कोई जीत हार का खेल नही खेल रहे ह। न ही यह हम लोगों की प्रतिष्ठा का प्रश्न है। हम किसी संस्था या संगठन का काम भी नही कर रहे कि कोई लाभ हानि का आकलन है। हमारा कथन ठीक नही उसी क्षण हम अपने कथन में संशोधन कर लेते ह। किसी भी परिस्थिति में उत्तर देने से पलायन का न कोई स्वभाव है न आवश्यकता और न ही मजबूरी मैं माह में पन्द्रह दिन दिल्ली कार्यालय मे रहता हूँ। मेरा फोन नं. दोनों कार्यालय में 09425254192 है। आप फोन से चर्चा करके कभी दिल्ली आ भी सकते है। दिल्ली कार्यालय का पता है।

आर्य भूषण भारद्वाज, गीतांजली पब्लिक स्कूल के सामने भजनपुरा दिल्ली 110053,

5

6 **श्री रवीन्द्र सिंह तोमर संवाद सरोवर गुन्ना मध्यप्रदेश।**

धनंजय और जाहिरा दोनों ही अशिक्षा के कारण कानूनी न्याय से वंचित रहे। यदि वे शिक्षित होते तो उनकी ऐसी हालत नही होती। आप भी चौदह वर्ष तक जेल में विचाराधीन कैदी के रूप में रहे कैदी को सजा याफता नही मानते एवं और अधिक सजा को उचित कहत हैं। दूसरी और पल्टन मल्लाह को आजीवन कारावास और उसको हथियार बनाकर उससे हत्या कराने वाले को दोष मुक्त हो जाना भी हम प्रत्यक्ष ही देख रहे ह। गोडसे को हथियार बनाने वालों ने ही सन चौरासी में श्रीमती गांधी की हत्या कराकर उपभोक्ता संस्कृति और शहरीकरण को जन्म दिया और जन आन्दोलन को कागजों तक सीमित किया। कृपया इस संबंध में अपने विचार भेंजे।

उत्तर– मैं आपकी शिक्षा और योग्यता के विषय में जानता हूँ और मानता हूँ कि आप बहुत अच्छे प्रश्न करने की क्षमता रखते है। किन्तु पिछले चार पाच वर्षो स प्राप्त आपके सभी प्रश्न यह प्रमाणित करते हैं कि आप किसी न किसी विचारधारा के हथियार के रूप में प्रयुक्त होते हैं अन्यथा कोई कारण है कि आप कही की ईट कही का रोडा जोडकर इस तरह बेसिर पैर के पश्न उठाते। आपके प्रत्येक पत्र में संघ शब्द छूट गया यद्यपि गोडपे शब्द आकर उस ओर इशारा कर गया। मेरा आपसे निवेदन है कि आप भले ही संघ विरोधी विचार धारा के हो किन्तु विचार प्रस्तुति में आपको तर्क पूर्ण शब्द चयन करना चाहिए न कि जबरदस्ती।

आपके आठ लाइन के पत्र में ये चार मुद्दे शामिल है –

(1) धनंजय निर्दोष था,

(2) जाहिरा को भी न्याय नही मिला,

(3) नियोगी हत्याकांड में हत्या कराने वाले निर्दोष छूट गये।

(4) गांधी जी की हत्या करने में अप्रत्यक्ष रूप से शामिल लोगों का ही इन्दिरा हत्या में हाथ था।

मुझे आश्चर्य है कि आप गुना में बैठे बैठे इतने गंभीर मामलों की इतनी सूक्ष्म सतह तक पहुच गये जबकि मैं पूरे वर्ष भर इतना बाहर भी घूमता हूँ और इतना व्यापक सम्पर्क है। किन्तु मैं आपके चार निष्कर्षो में से अब तक किसी के अन्तिम निष्कर्ष तक नही पहुँचा कि क्या सच है और क्या झुठ को बार बार बोलन में गोयबल्य को भी पीछ छोडने के प्रयास कर रहे हों वहाँ सत्य क्या है। यह बताना अत्यन्त कठिन काम है जो आप इतनी आसानी से कर रहे है कि आप पर भी संदेह होने लगता है।

आप हमेशा प्रश्न करते है इस बार मैं आपसे प्रश्न करता हूँ कि आप ऐसी कौन सी व्यवस्था करते जो पूरी तरह धनंजय, जाहिरा, इन्दिरा के हत्यारे और नियोगी हत्याकांड में अप्रत्यक्ष शामिल लोगों को ठीक से पहचान कर अपराधियों को सजा और निंदोष को मुक्त करती ? क्या अखबारों में छपने या आप लोगों के कहने से निर्णय की व्यवस्था संभव है। यदि नही तो वह तरीका क्या हो? यह आप लिख भेजिये कि कानूनों में ऐसा फेरबदल करने से ठीक ठीक न्याय संभव है। यदि सुप्रीम कोट से उपर भी कोई और कोर्ट रख दे और वह भी यही फैसला द तो क्या आप उसे न्याय मान लेगे? यदि धनंजय निंदोष था और उसे फांसी हो गई तो व्यवस्था पूरी तरह दोषी है। किन्तु यदि धनंजय का अपराध फांसी लायक था किन्तु चौदह वर्ष जेल में रह जाने के कारण उसे फांसी न दी जावे इसमें मुझे कोई तर्क नजर नही आया। क्या बिना अपील किये या बिना पूरी सुनवाई किये ही फांसी दे दी जाये। यह धनंजय सुप्रीम कोट से निदोष छूट जाता ओर आप चौदह वर्ष की यातना का प्रश्न उठाते तो कुछ तर्क संगत था किन्त एक अपराधी को तत्काल फांसी न होकर चौदह वर्ष बाद फांसी हुई और यह विलम्ब अन्याय है यह मैं पहली बार सुन रहा हूँ। मेरा आपसे निवेदन है कि जिन लोगों ने अनावश्यक अपील करके धनंजय की फांसी म देर कराई उन्हें दण्डित कराने का प्रयास करिये क्योंकि वे लोग बेचारे को अनावश्यक इतने दिनों तक जेल में रहने के कारण बने।

मेरा आपसे पुनः निवेदन है कि आप प्रश्न करने के साथ साथ उत्तर भी सोचने का प्रयास करिये और गांधी हत्या को इन्दिरा गांधी हत्या से जाडकर उपभोक्ता संस्कृति जैसे घिसे पिटे शब्दो के साथ तालमेल के बजाय स्पष्ट रूप से स्वतंत्र चिन्तन की आदत डालिये।

6. श्री महेश भाई, विजयोपुर, गोपालगंज बिहार,

ज्ञान तत्व अंक पचासी मिला। मेरे प्रश्न का आपने आकडां सहित उत्तर दिया। यह प्रश्नोत्तर अन्य पाठकों को भी ठीक दिशा दे सकेगा। इस प्रश्नोत्तर से यह सिद्ध होता है कि उपभोक्ता वादी सुविधाभोगी की एक छोटी सी जामात व्यवस्था की अव्यवस्था कितनी चालाकी से बनाये रखती हैं। सच्चाई यह है कि इस चालाक जामात का निहितार्थ आम आदमी निगल रहा है और ये वे उसे व्यवस्था की हरियालो दिखाकर भविष्य के गर्त में ढकेल रहे हैं। ये लोग सामाजिक न्याय के साम्प्रदायिकता का हवा खडा करके वास्तविकता की समझ ही पैदा नही होने देते। परिणाम स्वरूप यथा स्थिति मजबूत से मजबूत होती जा रही है। आम आदमी अपनी पेट की ज्वाला बुझाने के प्रयत्नों में व्यस्त है तो अनिल मुकेश अम्बानी अपने वर्चस्व के संघर्ष में व्यस्त है। ठाकुरदास बंग और बजरंगलाल यथा स्थिति तोडने के प्रयत्नों में व्यस्त और मस्त ह तो सुश्री निर्मला देशपांडे हरिजन सेवक संघ की सत्रह करोड की राशि की सुरक्षा तथा पाकिस्तान चीन यात्रा मैत्री यात्रा में लगी है। यह एक विडम्बना ही है कि अखबारों में प्रयत्न करके छपवाया जाता है कि गाधी कभी बन नहीं सकता और कृत्य सारे गांधी हत्या के होते है। मैं तो इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि ऊँची कुर्सी संवेदन हीन होकर यथा स्थिति को मजबूत करने में ही लगी है।

उत्तर मैं आपकी समीक्षा से पूरी तरह सहमत हूँ। भारत में उपभोक्ता वादी सविधा भोगियों की एक बहुत छोटी जामात ही है जा भौतिक विकास को अपना एकमात्र राष्टोय एजेन्डा घोषित करके सम्पूर्ण भारत को उपभोक्ता वादी संस्कृति की ओर ढकेल रही है। यह टुकडो अपने राजनैतिक आर्थिक स्वार्थो की पूर्ति के लिये सुविधाभोग की जो असीमित भूख पैदा कर रही है। वह समाज में वास्तविक समस्याओं से ध्यान हटाकर यथा स्थिति को लगातार मजबूत कर रही है। इस टुकडो में सभी पूँजीवादी और साम्यवादी जमातें शामिल है। दोनों दिन रात एक दूसरे के विरूद्ध तलवारे लिये टकराते रहते है। किन्तु शोषण के मामले में दोनों के स्वर एक समान है। मुझे आश्चर्य होता है कि एक रिक्शे वाला भी पेट्रोल और रसोई गैस की मूल्य वृद्धि का विरोध करता है किन्तु वह यह जानता ही नही कि उसके रिक्शे पर कितना भारी उत्पादन आर बिक्री कर लागाकर मूल्य वृद्धि की गई है। वह यह भी नही सोच पाता कि डीजल पेटोल की मूल्य वृद्धि से पेट्रोल डीजल चलित वाहनों का मंहगा आवागमन रिक्शा चालक के लिये वरदान है। उसे तो उसकी सारी समस्याएँ बताने का ठेका प्रत्यक्ष रूप से वामपंथियों और अप्रत्यक्ष रूप से दक्षिण पंथियों के पास है और दोनों ही ठेकेदार उसे दिनरात यही समझा रहे है कि डीजल पेटोल की मूल्य वृद्धि उसक रिक्शा चालन में हानिकर होगी इन लोगों ने हमारे गरीब लोगों को कृत्रिम उर्जा मूल्य कमी की एक ऐसी हड्डी दे दी जिसे चुस चुस कर अपने ही मुँह से निकल खून का स्वाद ये ले रहे ह और इन दोनों की जयकार कर रहे है।

मेरे एक मित्र रवोन्द्र सिंह तोमर बार बार उपभोक्ता वादी संस्कृति का रोना भी रोते है ओर भौतिक विकास की प्राथमिकता की भी बात करते है। यदि आम नागरिकों में सडक, पानी बिजली शिक्षा स्वास्थ जैसी भौतिक आवश्यकताओं की असीम भूख पैदा की गई तथा उक्त भूख पूरी करने के प्रयत्न भी हुए तो अन्य अनेक वास्तविक समस्याएँ भी नैपथ्य में चली जायेगी तथा उपभोक्तावादी संस्कृति भी मजबूर होगीं। मैं नही समझता कि अन्य सभी समस्याओं को दरकिनार करके भौतिक विकास को ही एक मात्र लक्ष्य बनाने की वकालत और उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रचार प्रसार का रोना रोने के पीछे कौन सा नाटक काम करता है। भौतिक आवश्यकताओं की भूख पैदा करने और उसकी पूर्ति के निरंतर प्रयासों का स्वाभाविक परिणाम है उपभोक्ता संस्कृति विस्तार। या तो हमारे वामपंथी मित्र पूँजीवादी की भौतिक प्रगति की असीम भूख पैदा करने वाला नीति के साथ चलने से परहेज करें या उपभोक्ता संस्कृति विस्तार के विरोध का नाटक बन्द करें। मैं महसूस करता हूँ कि हमें भौतिक प्रगति और ग्यारह समस्याओं के समाधान के बीच कोई न कोई सामंजस्य स्थापित करना ही होगा और कोई मार्ग नही है।

मैं महसूस करता हूँ कि विचार मंथन की प्रक्रिया को आगे बढाने की गंभीर जरूरत है तभी इस यथा स्थिति सुदृढकरण के वामपंथी औद दक्षिणपंथी षडयंत्र को तोडा जा सकेगा। आपकी और सक्रियता की अपेक्षा है।

7. श्री संतोष शर्मा बी.ए 57 शालीमार बाग दिल्ली 88

आपने छत्तीसगढ विधान सभा का चुनाव लडा होता तो जनता के बीच भी प्रचार होता और आप यदि चुने जाते ता अधिक दम से अपनी बात रख पाते। आपने नगर पंचायत का चुनाव लडकर जो ठीक शुरूआत की उसको आगे क्यों नही बढाया?

उत्तर– आपने जो प्रश्न किया है वह बहुत जटिल है मेरे अनेक मित्र ऐसे सुझाव देते है। हमारे उपाध्यक्ष अमरसिंह जी तो इस पर बहुत जोर देते ह। अतः इस मुद्दे पर विस्तृत समझ आवश्यक है।

व्यवस्था परिवर्तन और व्यवस्था में सुधार में बहुत अन्तर है। व्यवस्था में सुधार तभी संभव है जब व्यवस्थापकों की नीयत और नीतियों में से एक गडबड हो दोनों नही वर्तमान में दोनो गडबड है। अतः अब न तो व्यवस्था में कोई सुधार या संशोधन संभव है। न ही हम ऐसा कोई प्रयास कर रहे है। व्यवस्था परिर्वतन ही एक मात्र मार्ग है यह अन्तिम रूप से मान लिया गया है। हमने पांच अक्टूबर दो हजार चार से व्यवस्था परिवर्तन का एकसूत्रीय अभियान शुरू भी कर दिया है। राजनीति के माध्यम से व्यवस्था में सुधार तो किया जा सकता है किन्तु परिवर्तन नहों क्योकि व्यवस्था परिर्वतन समाज शास्त्र का विषय है राजनीति शास्त्र का नही। राजनीति शास्त्र जब व्यवस्था के सुधार में असफल हो जाता है तथा भविष्य में भी सुधार की कोई संभावना नही दिखती तब व्यवस्था परिवर्तन की आवश्यकता होती है और व्यवस्था परिवर्तन राजनीति शास्त्र की सीमाओं से निकलकर समाज शास्त्र का विषय बन जाता है भारतीय राजनीति ग्यारह समस्याओं में लगाता वृद्धि की दोषी है और भविष्य में उनमें से किसी एक के भी समाधान की उसके पास कोई योजना या संभावना नही है। तभी तो हम लोगों के व्यवस्था परिर्वतन को राजनीति से पृथक करके समाज के जिम्मे लिया है। मुझे खुशी है कि सर्वोदय ने भी इस बात को महसूस किया और ठाकुरदास जी बंग के माध्यम से इसमें अपनी सहभागिता दर्ज की है। भारत विकास संगम ने भी इस कार्य को चुनौती के रूप में स्वीकार किया है और भारत विकास संगम के प्रमुख श्री गोविन्दाचार्य जी ने राजनीति में शामिल होने का आडवाणी जी का आमंत्रण अस्वीकार कर दिया है। धीरे धीरे वे सब लोग जो राजनीति में रहकर निराश है वे व्यवस्था परिवर्तन के प्रयास में कूद पडेगें। दूसरी ओर प्रसिद्ध जैन मुनि विनय सागर जी ने भी यह महसूस किया है कि अब समाज को राजनैतिक व्यवस्था परिवर्तन में हस्तक्षेप करना ही चाहिए इस समय जो लोग राजनैतिक उच्चश्रखलता से आंख मूद कर संत परिपाटी की पुरानी लीक पर ही कायम है वे भूल कर रहे है विनय सागर जी ने भो व्यवस्था परिवर्तन के कार्य में कूदने का निश्चय किया है। ऐसे समय में मै विधान सभा या लोक सभा का चुनाव लडूँ यह या तो मेरा स्वार्थ माना जायेगा या कायरता जो लोग व्यवस्था परिवर्तन का अंसभव मानते ह वे ही व्यवस्था में सुधार के लिए राजनीति मं जाने की सोच सकते है मैं नही।

रामानुजगंज का नगर पंचायत अध्यक्ष बनना न कोई व्यवस्था सुधार के लिय था न व्यवस्था परिवर्तन के लिये। उद्देश्य सिर्फ यह प्रमाणित प्राप्त किये जा सकते ह मै यदि अध्यक्ष न होकर पार्षद होता तो क्या कर लेता यदि छत्तीसगढ की जोगी सरकार या रमन सरकार मुझे कडा होकर रोक देती या बर्खास्त कर देती तो मैं क्या कर लेता मेरे पयोग की सफलता की तुलना विधायक या सांसद से करना बिल्कुल ही अनुपयुक्त है। रामानुजगंज शहर के अध्यक्ष के रूप में म वहां क लिये इतना अधिक शक्तिशाली था जितना आज भारत का प्रधानमंत्री भी नही है मैं अपने प्रयोग पूरी स्वेच्छा से करता था जनता सर्मथन करती थी पार्षद भी मजबूरन समर्थन करते ही थे छत्तीसगढ के नगरपालिका कानून के अनुसार अध्यक्ष को पार्षद सर्व सम्मति से भी हटा नही सकते क्योकि वह जनता द्वारा सीधे मतदान द्वारा चुना जाता है और जनता ही हटा सकती है। मान लिजिये कि मैं भारत का प्रधानमंत्री भी बन जाता तो मनमोहन सिंह जी के समान वामपंथिया के सामन या अटल जी के समान संघ परिवार के इर्द गिर्द चापलूसी करता रहता । यह बिल्कुल सच है कि व्यवस्था में किसी तरह का सुधार न प्रधानमंत्री कर सकते ह न राष्ट्रपति व्यवस्था को तो बदलना ही होगा और यह काम हम और आप जैसे सामाजिक चिन्तक ही कर सकते हं अतः आपसे निवेदन है कि आप भूलकर भी मुझे राजनैतिक दलदल की ओर आकृष्ट होने की सलाह न दें।

8. श्री मुरारीलाल अग्रवाल, संपादक सतयुग की वापसी, 34 मधुबन, अलवर 301001 राजस्थान

ज्ञान तत्व अंक छयासी मिला। आपके प्रयासों की दिशा तो ठीक है किन्तु परिणाम प्राप्त करने में बहुत विलम्ब दिखता है।

आजकल पंजाब केशरी में अश्विनी कुमार जी के सारगर्भित लेख आते है। इकतीस जनवरी से पांच फरवरी तक क लेख बहुत गंभीर है। आप पढ़ें तो लाभ होगा। आज की तात्कालिक आवश्यकता है कि इस बाबा छाप संविधान को बदला जाय। संविधान की धारा अठाइस अल्पसंख्यकों को अपने धर्म और संस्कृति के प्रचार प्रसार का मौलिक अधिकार देती है। सब जानते हैं कि मुसलमान और इसाई हिन्दुत्व विरोधी धारणा रखते है किन्तु हमारा संविधान उन्हें ऐसी धारणा रखने का मौलिक अधिकार भी देता है। भारत के चरित्र पतन बहुत तीव्र गति से हो रहा है। धर्म निरपेक्षता के नाम पर बेइमान लोग शासन कर रहे ह। मेरी सलाह है कि आप और काम छोडकर संविधान परिवर्तन के कार्य में लग जावें।

उत्तर — छत्तीसगढ में पंजाब केसरी मिलना बहुत कठिन है यदि उक्त पांच दिनों के अंक हो तो आप मुझे सिर्फ उक्त लेखों की फोटो कापी भिजवाने की कृपा करे। मैं भी दिल्ली में प्रयास करूगा।

भारतीय संविधान अपने उददेश्य में विफल हुआ। उसमें व्यापक संशोधन की आवश्यकता है। मैं पूरी तरह सहमत भी हूँ और प्रयत्नशील भी किन्तु क्या संशोधन हो यह तय करना आसान नही। धर्म और संस्कृति के मामले में दो गुट बने हुए ह (1) संघ परिवार समर्थक (2) संघ परिवार विरोधी। वास्तव में दानों गुट ही धर्म निरपेक्ष नही है एक हिन्दू राष्ट्र की मांग करता है और दूसरा विरोध। संघ समर्थक गुट समान नागरिक अंहिसा के नाम पर समान आचार सहिता का पक्षधर है तो दूसरा समान आचार संहिता के विराध के नाम पर समान नागरिक संहिता का भी विराधी है। उन दोनों ही पेशेवर गिरोह है दोनों का उददेश्य है राजनैतिक सत्ता प्राप्त करना और मुखौटा है धर्म या धर्म निरपेक्षता। ऐसी विकट परिस्थिति में संशोधन कैसे संभव है हम संविधान संशोधन के पक्ष में आंदोलन प्रारंभ कर रहे हैं किन्तु आप विचार करिये कि क्या आप धर्म निरपेक्षता और समान नागरिक संहिता का समर्थन करेंगे। क्या आप हिन्दू राष्ट्र और समान आचार संहिता की जिद्द नही करेंगे? जो लोग भारत के सविधान में हिन्दू राष्ट्र और समान आचार संहिता के पक्ष में संशोघन करना चाहते है। मैं व्यक्तिगत रूप से उनसे सहमत नही। जो लोग समान नागरिक संहिता और धर्म निरपेक्ष स्वरूप के पक्षधर है उनका मैं भरपूर समर्थन करूगा।

9. श्री रामनारायण मिश्र अलीगढ़, उत्तर प्रदेश,

आपके विचार लम्बे समय से पढता रहा हूँ यद्यपि आप बहुत सीमा तक तटस्थ रहते है। किन्तु कही न कही आपकी सोच अन्तर्राष्टोय विषयों में अमेरिका की ओर आर्थिक विषयों में पूंजीवाद की ओर तथा धर्म के मामले में हिन्दुओं की ओर झुकी हुई दिखती है। ऐसा क्यो है। क्या आप और तटस्थ नही हो सकते ?

उत्तर – मेरा बचपन से ही स्वभाव रहा है कि मै जिसे सत्य मानता हूँ। उसे उसी रूप में प्रकट अवश्य ही करता हूँ। चाहे वह बात अन्य लोगों को कितनी भी असत्य क्यों न दिखें। लोग मुझ पर क्या आरोप लगायेंगे यह मैंने कभी परवाह नही कि आप चाहे तो मेरे कार्यक्षेत्र में बचपन स अब तक की जीवन पद्धति का पता कर सकते है। लोग मुझे बहुत जिद्दी कहते ह क्योंकि मैं दूसरों के दबाव से विचार अभिव्यक्ति के साथ कोई समझौता नही करता। किन्तु इसके साथ ही यह बात भी जुडो है कि मैं ज्योही अपने कथन की अपेक्षा दूसरों के कथन को ठीक मानता हूँ तुरंत ही अपनी सोच को संशोधित या परिवर्तित कर लेता हूँ। इस विचार परिवर्तन में मैं जरा भी हिचक नही करता।

आपने तीन निष्कर्ष निकाले है। तीनों ही वास्तव में गलत और तुलनात्मक रूप से सही है। मैं राष्ट्र को व्यवस्था की अंतिम इकाई नही मानता। मेरे विचार में राष्ट्र के उपर भी एक ऐसी इकाई होनी चाहिये जो राष्ट्रों की स्वेच्छाचारिता पर अंकुश लगा सके। अब तक ऐसी व्यवस्था का अभाव है जो हमारी कमजोरी है। राष्ट्र की आन्तरिक व्यवस्था में भी मैं तानाशाही की अपेक्षा लोकतंत्र को और लोकतंत्र की अपेक्षा लोक स्वराज्य प्रणाली का पक्षधर हूँ। जिन देशों में लोकतंत्र के स्थान पर तानाशाही है वह तानाशाही हम सबके लिये कलंक है। हमारा कर्तव्य है कि हम ऐसे देशो के नागरिकों को तानाशाही से मुक्ति दिलाने की पहल करें और यदि इस पहल म कोई निस्वार्थ देश आगे आता है। तो हम उसका साथ दे या ऐसे निस्वार्थ देशों का नेतृत्व करें यदि हम हाथ पर हाथ धरे बैठे रहेंगे तो अमेरिका सरीखें स्वार्थी देश ऐसी पहल करेंगे और हम कुछ नही कर सकेंगे। अमेरिका ने इराक में जो कुछ किया वह पूरी तरह गलत था क्याकि अमेरिका की नीयत उसे मुक्त कराने की अपेक्षा अपने प्रभाव विस्तार की अधिक थी हमें अमेरिका का पूरा पूरा विरोध इस प्रकार करना चाहिये कि हम सद्दाम समर्थक गुट में न दिखें। भारत अमेरिका विरोध के नाम पर सद्दाम की तानाशाही का समर्थन करे यह न्यायाचित तो नही कहा जा सकता भले ही यह परिस्थितियाँ की मजबूरी हो वैस अभी सद्दाम का समर्थन हमार समक्ष कोई मजबूरी भरी नही थी। अतः हमें अमेरिका विरोधी फ्रांस जर्मनी जैसे देशा का समर्थन करना चाहिए था न कि लोकतंत्रीय अमेरिका विरोधी तानाशाह सद्दाम का मैं अमेरिका की विस्तार वादी नीतियों का घोर विरोधी हूँ और तानाशाही व्यवस्था का तो उससे भी अधिक मैं अमेरिका विरोध के नाम पर तानाशाहों के समर्थन का पहले भी विरोधी था और आज भी हूँ। इराक युद्ध के समय मेरे अनेक अमेरिका विराधी सर्वोदयी मित्रों का आकोश भी झेलना पडा था किन्तु अब भी मैं स्वयं को ठीक ओर उनको गलत मानता हूँ। आर्थिक विषयों में भी मेरी सोच बिल्कुल साफ है। मैं सरकारीकरण और व्यवसायीकरण के बीच सरकारीकरण को अधिक घातक मानता हूँ। व्यवसायी करण यदि स्वच्छन्द हो जाय तो आर्थिक केन्दोयकरण का घातक परिणाम होता है किन्तु सरकारोकरण का परिणाम उससे भी कई गुना अधिक घातक होता है। हम सत्ता और धन दोनों के विकेन्दोकरण के पक्षधर हैं किन्तु हम धन के विकेन्दोकरण के नाम पर सत्ता के केन्दोयकरण का समर्थन तो नही कर सकते। हमें सत्ता और धन दोनों के विकेन्दोकरण की पहल करनी चाहिये और यदि हम ऐसी पहल नही करते तो व्यवसायीकरण धीरे धीरे सरकारीकरण को निगल जायेगा और हम कुछ नही कर पायेंगे क्योंकि व्यवसायीकरण की अपेक्षा सरकारी करण अधिक घातक है। मुझे आश्चय होता है कि भारत में शिक्षा तक के सरकारीकरण की जोरदार वकालत हो सकती ह जबकि हमारी शिक्षा के गुणात्मक आर संख्यात्मक विकास में सरकारीकरण सबसे अधिक बाधक है। शिक्षा के पूरा व्यवसायीकरण के जो दुष्परिणाम आते वे सरकारीकरण के दुष्परिणाम से कम होते। मैं पूर्व में भी सरकारीकरण के स्थान पर भी आर्थिक विकेन्दोयकरण का पक्षधर हूँ। भारत वर्तमान जो भी आर्थिक समस्याएँ है आर्थिक असमानता को छोडकर वे सब सरकारीकरण के दुष्परिणाम है यदि सरकारीकरण के स्थान पर नियंत्रित व्यवसायीकरण की नीति होती तो भारत में आर्थिक असमानता सहित गरीबी बेरोजगारी आदि का बेहतर समाधान संभव था। धर्म के मामले में भी स्पष्ट हूँ। मेरे विचार में हिन्दू एक जोवन पद्धति है और इस्लाम एक संगठन। हिन्दू गुणात्मक विस्तार को महत्वपूर्ण मानता है और

इस्लाम संख्यात्मक विस्तार को। मैं पूरी तरह हिन्दू जीवन पद्धति को आदर्श मानता हूँ यदि धर्म के आधार पर समाज में चार विभाजन हो तो मैं कटटरवादी मुसलमानों को नष्ट कट्टरपंथी हिन्दुओं को आदर्श मानता हूँ। मेरे विचार में अभी दो गिरोह बने हुए है। (1) संघ परिवार समर्थक (2) संघ परिवार विरोधी। दोनों के राजनैतिक उद्देश्य है। एक अपने राजनैतिक उद्देश्यों के लिये राष्ट्र और भारतीय संस्कृति की खाल ओढकर हिन्दू चापलूसी करता है। मैं पूरी तरह धर्म निरपेक्षता का पक्षधर हूँ। मैं भारत के सभी शान्तिप्रिय धर्म प्रेमियो को एक मंच में लाना चाहता हूँ किन्तु यदि तात्कालिक रूप से किसी एक को चुनना हो तो मै इस्लाम को विचारधारा के रूप मे हिन्दुओं कि अपेक्षा अधिक कट्टर समझता हूँ। मै संघ परिवार रहित हिन्दुत्व का पक्षधर हूँ। उपरोक्त तीनों प्रश्न पर मैंने अपने विचार स्पष्ट किये ह। ये मेरे व्यक्तिगत विचार है। लोक स्वराज्य मंच के विचार भिन्न भी हो सकते है। पाठका से विचार मंथन के बाद इन निष्कर्षो के बदलाव भी हो सकता है किन्तु अब तक मेरे विचार यही है।

10. श्री के. आर. डडसेना, विनोबानगर मुगेली, छत्तीसगढ

मैने आपके पास एक पोस्टर भेजा था जिसमें गरीबी रेखा से नीचे जीने वाले तीस करोड लोगों के जीवन में सुधार के लिए अपने प्रयत्नों की रूपरेखा थी हमें इन लोगों के विकास को दिशा में कुछ करना चाहिये क्यांकि अहिंसक जन आन्दोलन की दिशा में यह वर्ग सहायक बन सकता है। हम सब लोग इस दिशा में प्रयत्नशील है। आपका मार्गदर्शन चाहिय।

उत्तर — मैं आपकी योजना में कई खामियाँ देखता हूँ।

(1) शासन को कभी भी व्यक्ति को इकाई नही बनाना चाहिए परिवार को इकाई बनाना अधिक सुविधा जनक है। परिवार इकाई बनाने के पूर्व हमें परिवार की परिभाषा और संरचना भी स्पष्ट करनी होगी। यह सब करना चाहिए। इससे रोजगार का असंतुलन घटेगा।

(2) गरीबी रेखा बनाने की वर्तमान व्यवस्था बहुत दोषपूर्ण है। भारत में करीब एक प्रतिशत परिवार ऐसे हैं जो बिल्कुल विपन्न है। ये परिवार या तो अभाव ग्रस्त हैं या बेरोजगार ये श्रम कर नही पाते। इनका जीवन स्तर बिल्कुल ही खराब ह या तो भीख मांग कर गुजारा करते ह या आधा अधूरा ही खाकर रहते है। इनके छोटे–छोटे बच्चे भी जगल से दातुन या पत्ता तोडकर बाजार में बेचते ह या सडकों पर पड प्लास्टिक टुकडे इकट्ठे करते मिल जाते हैं। तीस प्रतिशत परिवार गरीबी रेखा के नीचे है जिन्ह पर्याप्त भोजन वस्त्र रोजगार का अभाव है और शेष गरीबी रेखा के उपर है। हम गरीबी रेखा के नीचे जो भी प्रयास करते हैं वह तीस प्रतिशत विपन्नों क जीवन स्तर में तो कुछ सहायक है किन्तु एक प्रतिशत विपन्नों के जीवन स्तर को तीस प्रतिशत लायक भी नही बना पाता हमारी नीतियाँ दो प्राकर की होनी चाहिए 1. एक प्रतिशत विपन्न परिवारों को भोजन, वस्त्र की ऐसी प्रत्यक्ष सहायता को वे विपन्नता से मुक्त हो सकें। तीस प्रतिशत लोगों को प्रत्यक्ष सहायता कुछ नही किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से ऐसी नीतियां बने कि श्रम मूल्य बहुत बढ जावे।

शिक्षा मे सहायता अनाज में सब्सीडी रोजगार के अवसर या लघु उद्योग प्रोत्साहन आदि सारे प्रयास षडयंत्र है। गरीबी रेखा के नीचे के अधिकाश लोगों का जीवन स्तर सिर्फ एक ही तरीके से सुधर सकता है और वह है श्रम मूल्य वृद्धि। गरीबी रेखा के नीचे वालों म करीब अस्सी से नब्बे प्रतिशत लोग श्रम प्रधान हैं और पांच से दस प्रतिशत बुद्धि प्रधान शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, लघु उद्योग आदि के सारे प्रोत्साहनों का लाभ या तो ये पांच प्रतिशत बुद्धि जीवी उठाते ह या उपर के लोग। यह सब बहुत बडा षडयंत्र है। गरीबी रेखा स नीचे जीने वाले को चक्को चलाने में पच्चीस प्रतिशत की छूट जो करीब पांच सौ रूपये है और गरीबी रेखा से उपर वाले को आटा मिल लगाने में भी पच्चीस प्रतिशत की छूट जो करीब तीन लाख हैं दी जाती है। गरीब को लाठी ओर अमीर को बन्दूक देकर प्रतिस्पर्धा के लिये छोडा जाता है। मेरे विचार में इसे बिल्कुल बन्द कर दें मैंने एक बार अपने एक मित्र से पूछा था कि यदि मेरे पास एक किलो अनाज है सत्तर प्रतिशत लोग भरे पेट है तीस प्रतिशत आधे पेट है और इन तोस प्रतिशत में से एक प्रतिशत बिल्कुल भूखे हैं हमें एक किला अनाज तीस प्रतिशत में बाटना चाहिए या एक प्रतिशत में आज हमारी सरकार की जो भी शक्ति है मान लीजिये कि वह सौ करोड रूपये को है। तो उसे वह शक्ति तीस करोड लोगों को उपर उठाने में लगानी चाहिए या एक करोड के मैं तो अन्तिम रूप स नतीजा निकाल चुका हूँ कि श्रम को मांग बढे और श्रम का मूल्य बढ यही एकमात्र इलाज है। अन्य सारी सुविधा बन्द कर द।

आप गरीबी रेखा के नोचे वालों को व्यवस्था परिवर्तन हेतु वर्ग के रूप में उपयोग करना चाहते ह। मैं ऐसे किसी वर्ग निर्माण के पक्ष में नही ऐसा वर्ग निर्माण समाज में टूटन पैदा करेगा। अतः आपस निवेदन है कि ऐसे प्रयत्न की सलाह न द।

11. श्री कालीचरण प्रेमी ए 106 बाग कालोनी सेक्टर 16 शास्त्रीनगर गाजियावाद 201002

मानवाधिकार संबधी आपके बेबाक विचारा ने बहुत प्रभावित किया आप मुसलमानों के कट्टरता की बात ता करते है किन्तु भारत में जातीय उत्पीडन की घटनाएँ घट रही है। दलित उत्पीडन आम बात हो गई है। सामूहिक नरसंहार भी हो ही रहे हैं। दलित महिलाओं स बलात्कार सवर्ण हिन्दू ही करते रहे है। हिन्दू कट्टरता तो और भी वीभत्स है। जाति और वर्ण को खतम किये बिना इसका सुधार संभव नहीं फिर भी आप इस विषय में मान रहते ह।

1/7/89 ढ प्रश्न 12. श्री विनोद खनगवाल 534/2 देवीनगर गोहाना, हरियाणा

आप आरक्षण को समाप्त करन के पक्षधर है। अब तक दलित इतने सबल नही हुए कि वे सवर्णो के सामने सिर उठाकर जी सकें। अब भी सवर्ण दलितों को कीड मकोडे से अधिक नही मानते। सवर्ण कभी दलित को सम्मान नही देगा। क्या आप आरक्षण समाप्त करने की इसीलिये वकालत करते हैं कि भारत में फिर से ब्राहमणवाद हावी हो जावें। आप यह क्यों नही सोचते कि स्वतंत्रता के बाद दलितों और महिलाओं के साथ अत्याचारों में इस तरह लगातार बढ़ात्तरी का कारण क्या है?

उत्तर – यह सच है कि ज्ञानतत्व में साम्प्रदायिकता पर अधिक चर्चा हुई और जातीय संकीर्णता पर बहुत कम। क्योंकि इस संबंध मे कोई प्रश्न आये नही और मै पहल नही किया। आपके प्रश्नों ने यह विषय खोल दिया है।

व्यक्ति के आचारण दा प्रकार के है 1. व्यक्तिगत 2. सामाजिक। व्यक्तिगत आचरण में सभी वर्गो में समान स्थिति है मुसलमानों में भी अपराध प्रवृति वाला को प्रतिशत वही है जो हिन्दुओं में या आदिवासियों और दलितों में महिलाओं में भी कोई अधिक अन्तर नही होता है। मुसलमाना मे ईमानदार दयालु या कार्यकर्ता प्रायः ऐसा कहते पाये जाते है कि मुसलमान अधिक अपराध करते ह किन्तु मेरे विचार से यह बात सच नही है। अपराध व्यक्तिगत प्रवृति है। उसका धर्म, जाति या लिंग से काई संबंध नही अपराधों का धर्म, जाति या लिंग से सिर्फ इतना ही संबंध है कि उनकी अपराध क्षमता क्या है। यदि वह समाज में सामाजिक या आर्थिक रूप से कमजोर हैं तो कम अपराध करता है और मजबूत है तो अधिक।

किन्तु धार्मिक मामलों में मुसलमान बहुत कट्टर हो जाता है। उस समय वह न्याय और मानवता की कोई परवाह नही करता जबकि हिन्द धार्मिक मामलों में पूरी तरह उदार होता है। जाति के मामले में हिन्दुओं में पूरी तरह उदार होता है जाति के मामले में हिन्दुओं में सवर्ण और दलित में बहुत अन्तर आ जाता है सवण व्यक्ति स्वभावतः अपने को श्रेष्ठ मानता है और जब उसकी श्रेष्ठता को चुनौती मिलतो है ता वह आक्रामण हो जाता है। यह विकृति बहुत पुराने समय से चले आ रहे जातीय आरक्षण का दुष्परिणाम है जिसमें ब्राहमण का लडका जन्म से ब्राहमण बनकर पूज्य बन गया। हजारों वर्षो के जातीय आरक्षण ने समाज म विकृति भी पैदा की और सामाजिक भेदभाव भी पैदा किया। यह विकृति सवर्णो की व्यक्तिगत प्रवृति नही थी बल्कि सामाजिक संस्कार था। सवर्णो की मजबूर स्थिति ने उसे दलितो पर अत्याचार के अवसर भी प्रदान किये।

इस समय का सबसे अच्छा इलाज स्वामी दयानन्द ने किया जिन्हाने वर्ग संघर्ष को बिना हता दिये ही जाति प्रथा पर अकुश लगाया अनेक दलित समाज म ब्राहमण बनने लगे पुरानी जातीय संकीर्णता के विरूद्ध बडो मात्रा मे सवर्ण आगे आने लगे और जातीय कट्टरता को सफल चुनौती मिली। इसी बीच कुछ दलित नेताओं की जल्दबाजी ने सामाजिक आरक्षण के विरूद्ध संवैधानिक आरक्षण की व्यवस्था करा ली। मरणासन्न जातिवाद फिर जीवित हुआ आर्य समाज के प्रयत्न असफल हुए। कर्म अनुसार जाति के स्थान पर जन्म अनुसार जाति प्रधान हो गई जो दलित कर्म अनुसार पण्डित का सम्मान पाने लगे थे उनकी सन्तान भी पुनः दलित हो गई वर्ग विद्वेष बढते बढते वर्ग संघष तक चला गया मैं पूरी तरह आश्वस्त हूँ कि यदि सन सैंतालीस में जातीय आरक्षण न देकर सबको समान रूप से समरस होने दिया जाता तो अब तक जातिवाद बहुत कम हो जाता। यह बात सच है कि यदि आरक्षण नही होता तो निम्न वर्ग के लोग शासकीय नौकरी राजनीति या अन्य उच्च पदों पर बहुत कम बैठ पाते। पिछले पचास वर्षो में आरक्षण के करण यदि सात आठ प्रतिशत दलित परिवार उपर उठ सके है तो बिना आरक्षण के ऐसे लोगो की संख्या एक प्रतिशत से उपर नही जाती किन्तु जिस तरह पूरे भारत में शिक्षा का स्तर बढा और जिस तरह जातीय उपनाम बदल रहे थे उससे जातीय पहचान समाप्त होना अधिक आसान हो रहा था जिसमें जातीय आरक्षण ने रोक लगा दी।

आपका कथन है कि स्वतंत्रता के बाद दलितों और महिलाओं पर अत्याचार बढ ह। दलितों के साथ कीडे मकोडे सा व्यवहार हो रहा है। तो क्या हम मान ले कि आरक्षण पूर्व व्यवस्था वर्तमान व्यवस्था से अधिक अच्छी थी मेरे विचार में ऐसा नही है। आपने स्थिति को भयावह बताने का प्रयत्न किया है। जातोय दलितों के साथ न्याय किया है। उससे कई गुना अधिक समाज में जातिवाद को मजबूत किया है या समाज में वर्ग संघर्ष बढाया है।

मैने बहुत सोचा कि यदि आरक्षण नही होता ता एक प्रतिशत दलित भी उपर नही उठ पाते और हुआ तो उत्थान के साथ साथ वर्ग संघर्ष लेकर आया। कुल पांच से सात प्रतिशत दलित परिवार आरक्षण के कारण उठ पाये। शेष तो अब भी वही के वही है यदि आरक्षण और पचास वर्ष जारी रहा तो ये पांच सात प्रतिशत और उपर उठते रहेंगे। एक दो प्रतिशत इनकी संख्या और बढ सकती है। पांच सात प्रतिशत दलितोत्थान के लिये वर्ग संघष कितना उचित नही है यह विवाद का विषय है किन्तु यह विवाद का विषय नही कि यदि श्रम मूल्य वृद्धि होती तो बडो संख्या में दलितोत्थान संभव था। दलित वर्ग सामाजिक आरक्षण के परिणाम स्वरूप श्रम निर्भर होता गया और सवर्ण धन और वृद्धि निर्भर। स्वतंत्रता के बाद की संवैधानिक व्यवस्था ने बुद्धि का मूल्य बढाया और उसमें दलितों को आरक्षण दे दिया। शासकीय कर्मचारियों के वेतन वास्तविक श्रम मूल्य स पांच से दस गुने तक अधिक करके उसमें दलितों को आरक्षण देने से कुछ बुद्धि प्रधान दलित तो लाभान्वित हो गये किन्तु शेष श्रम प्रधान दलित वही के वही रह गये। बुद्धि का मूल्य बढाने में सवण भी सहमत थे क्योंकि आरक्षण के अतिरिक्त तो सारा लाभ उन्ही का होना था यदि बुद्धि का मूल्य न बढाकर श्रम जीवी लाभान्वित होता जिसका अधिकांश लाभ दलित आदिवासी या पिछडां को मिलता। इतना अवश्य है कि पांच सात प्रतिशत बुद्धिजीवी दलित जो आज दलित आरक्षण के नाम पर लाभ उठा चुके है वे पिछड ही रह जाते। साथ ही आरक्षण के दुष्परिणाम स्वरूप वर्ग विद्वेष भी नही फैलता सामाजिक आरक्षण ने जो समस्या समाज में पैदा की है उसका

समाधान न तो संवैधानिक आरक्षण था न है। इसका तो सिर्फ एक ही समाधान है श्रम की मांग बढ श्रम का मूल्य बढ और श्रम का सम्मान बढ सरकारी नौकरियों या राजनैतिक पदों की मांग बढ मूल्य बढे सम्मान बढे और आरक्षण देकर दलितोत्थान का ढिढोरा पीटा जाय यह नीति दलित विरोधी है। श्रम विरोधी है और आत्मघाती भी है।

आज भारत मे ग्यारह समस्याएँ बढ रही है। जब समाज की अस्मिता ही संकट में है तो हम ग्यारह समस्याओं की पहले चिन्ता करें कि आपके सामाजिक न्याय कीं। समाज में भ्रष्टाचार चरित्र पतन हिंसा और आतंक बढता रहे और आपके दलितोत्थान की सबसे पहले चिन्ता की जाये यह मेरी समझ के बाहर है। यदि समाज सुरक्षित रहेगा तो दलितोत्थान हो जायेगा और यदि समाज ही संकट में चला गया तो न दलित बचेगा न सवण। घर के चूहों से परेशान होकर घर को आग लगने से प्रसन्न होना कई बुद्धिमानी नही शासकोय कर्मचारियों और राजनेताओं की पद प्रतिष्ठा और वेतन भत्तों में कमो करके सम्पूर्ण आरक्षण को बिल्कुल समाप्त कर दीजिये श्रम की मांग मूल्य और सम्मान का तीव गति से बढने दीजिये तथा अपनी अधिकतम शक्ति दलितोत्थान महिला उत्थान आदिवासी उत्थान आदि भ्रामक नारों से हटाकर ग्यारह समस्याओं के समाधान में लगा दोजिये तो दलितोत्थान महिला उत्थान आदिवासी उत्थान तो स्वतः ही हो जायेगा समाज भी सुरक्षित हो जायेगा।

लोक स्वराज्य मंच समाचार

लोक स्वराज्य मंच के अम्बिकापुर कार्यायल के साथ साथ दिल्ली कार्यालय भी बहुत सक्रिय हो गया है। लोक स्वराज्य मंच के संगठन सचिव का काम करने के लिये दो मित्रों ने फिलहाल एक वर्ष तक के लिये पूरा समय देने की घोषण की ह। (1) श्री पुष्पेन्द्र चौहान दिल्ली तथा (2) श्री आनन्द गुप्त अम्बिकापुर। वर्तमान में चौहान जी दिल्ली कार्यालय को केन्द्र बनाकर कश्मीर, हरियाणा, उत्तरांचल, हिमांचल, पजाब, उत्तर प्रदेश (पूर्वी छोडकर) राजस्थान तथा गुजरात का संगठन सम्हालेंगे। आनन्द गुप्त जी महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, बिहार, छत्तीसगढ, झारखंड पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा उडोसा का संगठन सम्हालेंगे। शेष भारत के विषय में दो माह बाद विचार करेंगे। आनन्द जी अम्बिकापुर को केन्द्र बनाकर संगठन करेंगे। संगठन सचिव जाकर प्रयास करेंगे कि प्रदेश जिला या स्थानीय स्तर पर लोक स्व मंच का संगठन खडा हो। यदि आयोजक स्वयं या आनन्द जी के सहयोग से संगठन खडा नही कर सकगे। तो व एक लोक स्वराज्य सम्मेलन बुलाकर या मेरे भाषण का आयोजन करके मेरा भाषण करा सकते है। जिससे संगठन खडा होने में मदद मिल सके। आप सब साथियों से निवेदन है कि आप अपने संगठन सचिवों से समन्वय स्थापित करें जिससे संगठन का काम सुचारू रूप से चल सके।

दिल्ली कर्यालय का पता ——

आर्य भूषण भारद्वाज/पुष्पेन्द्र चौहान
बी 29 मंगल पांडे मार्ग गीताजंलि पब्लिक स्कूल के
सामने भजनपुरा नई दिल्ली 110053
फोन —9811443566

अम्बिकापुर का पता ——

1. आनन्द गुप्त
बनारस चौक, अम्बिकापुर
सरगुजा (छत्तीसगढ) —497001
मा. 09826157295

2. बजरंग लाल अग्रवाल
बनारस चौक, अम्बिकापुर सरगुजा (छ.ग.) 497001
मा. 09425254192